इकाई 5 भारतीय दुभाषिए और ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय दुभाषिए

5.2.1 भारतीय दुभाषिए और औपनिवेशिक सूचना संग्रहण

5.3 भारतीय व्याख्याकार और औपनिवेशिक कानून का निर्माण

5.4 भारतीय दुभाषिए और लोक साहित्य

5.5 सारांश

5.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.7 शब्दावली

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में भारतीय दुभाषियों की भूमिका को समझ सकेंगे;
- यह समझ सकेंगे कि भारत में साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया हमेशा साझा अनुभव की रही है;
- यह जान सकेंगे कि औपनिवेशिक जानकारी संचयन किस प्रकार स्वदेशी ज्ञान पद्धति तथा विजित लोगों पर शासन के मूल उद्देश्य एवं हितों की रक्षा से प्रेरित रही है;
- यह जान पाएँगे कि औपनिवेशिक काल में कानून के निर्माण की प्रक्रिया में मुस्लिम और हिंदू विधि को कैसे भिन्न श्रेणियों में देखा गया; तथा
- यह समझ सकेंगे कि स्थानीय आभिजात्यों ने स्वदेशी मुखबिरों के रूप में भारतीय लोक साहित्य के ज्ञान को कैसे साझा किया।

5.1 प्रस्तावना

हम इस पाठ्यक्रम की औपनिवेशिक अभिलेख से संबंधित इकाई 6 में पढ़ेंगे कि ब्रिटिश साम्राज्य का निर्माण विभिन्न विमर्शों के समूह द्वारा भारत को जानने पर आधारित था। उपनिवेशकाल में भारत संबंधी जानकारी को विभिन्न रूपों और तरीकों से निर्मित और निरूपित किया गया। इसलिए न केवल प्राचीन भारतीय ग्रंथों का ज्ञान आवश्यक था बल्कि सामाजिक प्रथाओं और परंपराओं को भी समझना जरूरी था। इस तरह जानने की प्रक्रियाएँ, प्रारंभिक तौर पर ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा नियुक्त 'ज्योतिषियों, वैद्यों, पारस पत्थर के विशेषज्ञों, दाइयों' और अनेक भारतीय दुभाषियों के आधार पर निर्मित हुई। (बेयली 1996, 1)

अंग्रेजी उपनिवेशक शासकों को भारत पर शासन करने के लिए स्थानीय लोगों से उनकी भाषा जानना जरूरी था। भाषा न जानने की स्थिति में अनुवाद एक सहारा था। दूसरा रास्ता यह था कि स्थानीय तथा बाहरी शासकों की भाषाएँ जानने वाले दुभाषिए इसमें सहायक हो सकते थे। इस प्रक्रिया में भारत में दुभाषियों का नया वर्ग सामने आया। स्वदेशी ज्ञान के वाहक और विश्वासपात्र के रूप में भारतीय दुभाषियों ने भारतीय ज्ञान को उपनिवेशी शासकों के लिए अनूदित एवं व्याख्यायित किया। इसके लिए उन स्वदेशी सहायकों को भारत के मौलिक रहस्यों

को जानना आवश्यक था, जो अंग्रेजों के लिए ग्रंथों, बोली और संस्कृति को व्याख्यायित कर रहे थे। पर उन्हें यह व्याख्या करना मुश्किल था। सी.ए. बेयली के अनुसार, अंग्रेजों ने भी इस प्रकार से उपलब्ध करवाई गई जानकारी को 'व्याख्यायित और गलत व्याख्यायित' भी किया।

इस इकाई में ब्रिटिश साम्राज्य के निर्माण में विभिन्न भारतीय दुभाषियों की भूमिका पर प्रकाश डाला जा रहा है। साथ ही यह भी बताया जा रहा है कि वे दुभाषिए न केवल ऐसी जानकारी संग्रह करने में सहायक सिद्ध हुए, जिससे साम्राज्य को सुदृढ़ करने में सहायता मिली, बल्कि औपनिवेशिक कानून तथा नीतियों के निर्माण में भी सहायक सिद्ध हुए। दुभाषिए एक प्रकार से स्थानीय तथा उपनिवेशवादी शासकों के बीच अनुवादक का काम कर रहे थे। आइए सबसे पहले हम, ब्रिटिश साम्रायवाद और भारतीय दुभाषियों के संदर्भ में चर्चा करें।

5.2 ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारतीय दुभाषिए

भारतीय दुभाषियों ने औपनिवेशिक शासन के विभिन्न चरणों में अलग-अलग भूमिकाएँ निभाई। फिर भी राजनीतिक संपर्क के शुरुआती चरण में ही स्वदेशी सूचना पर ओपनिवेशिक निर्भरता दिखाई देती है। जैसे-जैसे साम्राज्य ने अपने शासन को सुदृढ़ किया, वैसे-वैसे उन्हें मूल निवासियों को और अच्छी तरह शासित करने के लिए जानकारी हासिल करने के नए-नए तरीकों की आवश्यकता पड़ी। ईस्ट इंडिया कंपनी के काल में अनेक लोग भारतीय अंग्रेजों के लिए व्याख्या की प्रक्रिया में संलग्न थे। इस चरण में व्याख्या की आवश्यकता मूल रूप से ब्रिटिश और स्वदेशी शासकों के अतिरिक्त व्यापारिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया से जुड़े अधिकारियों के बीच संप्रेषण के उद्देश्य को पूरा करने के लिए थी। कंपनी से 'क्राउन' (राजशाही) के मध्य शक्ति के हस्तांतरण के साथ ही विनियोजन की शर्तें भी बदल गईं। हालाँकि कंपनी शासन में भी मूल निवासियों को समझने की जरूरत हमेशा अंतर्निहित थी, किंतु यह आवश्यकता साम्राज्य के सीधे शासन में आने से और व्यवस्थित तथा विस्तृत हुई। जैसा कि हम अगली इकाई में देखेंगे, औपनिवेशिक अभिलेख के तंत्र ने बाद में स्थानीय दुभाषिए के योगदान का अपने ढंग से मूल्यांकन करके उपयोगिता कम करने का प्रयास किया। इस प्रकार उपनिवेशी शासकों ने मूल इतिहास को मिटाने एवं स्वयं को इतिहास रचयिता के रूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया। इन परिवर्तनों के परिप्रेक्ष्य में इस इकाई में हम प्रारंभिक औपनिवेशिक इतिहास लेखनों की निकोलस बी. डर्क्स की शोध के आधार पर विचार करेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि औपनिवेशिक ज्ञान उत्पादन के प्रारंभिक काल में औपनिवेशिक इतिहास लेखन, क्षेत्रीय सूचनाकारों पर अत्यधिक निर्भर था, फिर भी औपनिवेशिक इतिहास "स्थायित्व के भ्रम के रूप में औपनिवेशीकरण संभव करने वाली राजनैतिक सफलताओं से असुरक्षित" था। हमें यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि चाहे स्वदेशी व्याख्याकारों पर निर्भरता पर नियंत्रण पा लिया गया था, फिर भी औपनिवेशिक ज्ञान स्वदेशी सहायकों पर निर्भर रहना जारी रहा।

ईस्ट इंडिया कंपनी के समय से ही भारतीय दुभाषियों की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की गई। कंपनी का 17वीं तथा 18वीं शताब्दी का रिकॉर्ड मात्र व्यापारिक और राजनीतिक जानकारी का ही विवरण नहीं है, बल्कि उनमें कंपनी द्वारा विविध प्रयोजनों के लिए नियुक्त क्षेत्रीय अधिकारियों के नाम भी हैं। क्षेत्रीय अधिकारी बनिए, दलाल, दुभाषिए, गुमाश्ता, पंडित, सर्राफ, वकील जैसे विविध नामों से पंजीकृत थे। ये सभी विशिष्ट ज्ञान रखते थे। कुछ क्षेत्रीय व्यापार की विस्तृत जानकारी रखते थे। जैसे कौन-सी जगहों पर किस प्रकार के उत्पाद मिलेंगे तथा वे 'तंत्र' या माध्यम जिनके द्वारा वस्तुएँ खरीदी एवं वितरित की जा सकती थीं। दूसरे अधिकारी देशीय राज्य के तरीकों एवं नियमों की जानकारी रखते थे। ब्रिटिश अधिकारियों के लिए उन नियमों के अनुरूप व्यवहार करना आवश्यक था, क्योंकि वे सुरक्षा के लिए स्थानीय शासकों पर निर्भर थे।

ये सभी अधिकारी 'बहुभाषिक' थे तथा यूरोपीय व भारतीयों के बीच संप्रेषण में एक सुविधाजनक माध्यम के रूप में उभरे थे। दुभाषी का शाब्दिक अर्थ "दो भाषाएं" जानने और बोलने वाला होता है। कोरोमंडल तट पर दुभाषिए अनुवादक के रूप में कार्य करते थे। उदाहरण के लिए, उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों में फारसी ग्रंथों को संपादित करना, लिखना और अनुवाद करना शामिल था। वह 'मुहम्मडन स्कूल शिक्षक' के रूप में भी जाना जाता था। ये कंपनी के मुगलों से राजनयिक एवं राजनीतिक संबंध बनाए रखने के साधनों में प्रमुख थे। वकील न केवल फारसी का ज्ञान रखते थे अपितु दरबार की औपचारिकताओं और शासकों के व्यक्तित्व की भी जानकारी रखते

थे। वे ब्रिटिशों के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्य करते थे, जिन्हें निरंतर मुगलों के साथ समझौते करने पड़ते थे। (कॉन, 2007, 16-18)

फिर भी भारतीय दुभाषिए दस्तावेजों, अनुबंधों या नियम और कानून के मात्र शाब्दिक अनुवादक के रूप में नहीं कार्य करते थे। भारतीय और अंग्रेजों के संसारों के बीच एक विशाल सांस्कृतिक अंतर था जिससे गलत व्याख्या की बहुत संभावनाएँ थीं। इस प्रकार के परिदृश्य में भारतीय अधिकारियों को सांस्कृतिक अनुवाद का कार्य भी करना पड़ा। जैसा कि बार्नार्ड कॉन ने उल्लेख किया है कि सत्रहवीं शताब्दी में ब्रिटिश दृष्टिकोण, उनकी व्यापारिक रुचियों के अनुसार बहुत ही अतिरंजित था। इसलिए वे सभी चीजों को उसके 'मूल्य' के अनुरूप निर्धारित करते थे। कॉन यह भी रेखांकित करते हैं, सत्रहवीं शताब्दी में यूरोपीय लोग 'चिह्नों' के माध्यम से विश्व की व्याख्या करते थे, जबकि भारतीयों के लिए वस्तुओं का तात्विक मूल्य था। उदाहरण के लिए, ब्रिटिश उपहार या भेंट को अपने संबंध दृढ़ करने के साधन के रूप में देखते थे। उनके लिए कपड़े एक 'उपयोगितावादी वस्तु' थे, जबकि भारतीयों के लिए पहनावा, आभूषण, रीति-रिवाज इत्यादि सामाजिक-सांस्कृतिक क्रम में अधिक महत्व रखते थे और इस प्रकार वे तात्विक थे। कहने का तात्पर्य यह है कि वे अस्मिता, रिवाज और परंपरा के सक्रिय निर्माण में संलिप्त थे। कॉन उदाहरण देते हैं कि कैसे एक मुगल शासक के फरमान जारी होने के कार्य से ही, अंग्रेजों के उस समय की सत्ता में एक भागीदार होने का सूचक है। तब फरमान केवल एक आदेश नहीं था, अपितु सत्ता के कुछ संबंध भी अभिव्यक्त करता था।

18वीं शताब्दी में कॉलिन मैकेंजी ने जब मैसूर सर्वे की शुरुआत की तब वे क्षेत्रीय सहायकों और मुखबिरों पर अत्यधिक निर्भर थे। ये क्षेत्रीय सहायक और मुखबिर अधिकतर ब्राह्मण थे। विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षक की अपनी भूमिका में मैकेंजी ने स्वदेशी लोगों के जीवन में सीधे और आक्रामक प्रवेश का हमेशा विरोध किया। उदाहरण के लिए, जनगणना कार्य को वे 'हिंदू मत के अनुसार' क्रियान्वित करने का सुझाव देते हैं, जिससे कि स्वदेशी लोगों में इसके प्रति विरोध उत्पन्न न हो। इसके लिए स्थानीय संस्कृति और परंपरा के गहरे ज्ञान की आवश्यकता थी, जो केवल स्वदेशी लोगों द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता था। यह 'मैत्रीपूर्ण मानदंडों' के अनुसरण करने और 'अति-बुद्धिमान स्वदेशी लोगों' को नियुक्त करके ही संभव था। और इस तरह वे अपने सर्वे को सफलतापूर्वक संपन्न कर पाए। स्थानीय लोगों को सर्वे के काम में सहमत करने के लिए सहायकों का प्रयोग किया गया ताकि लोग अपनी संस्कृति और इतिहास में सन्निहित ज्ञान के विविध रूपों को उपलब्ध कराएँ।

1772 ई. में वारेन हेस्टिंग के समय में बंगाल में बेहतर सरकार बनाने की योजना शुरू की गई। इसके लिए प्राचीन भारतीय कानूनों की जानकारी आवश्यक थी। यद्यपि पहले से ही नियम ग्रंथों के विनियोजन और अनुवाद उपलब्ध थे, तथापि हेस्टिंग के समय में ही एक योजनाबद्ध प्रयास किया गया। इस पर इस इकाई के अगले भाग में विस्तृत चर्चा की जाएगी।

कंपनी के समय से ही अनुवाद और भाषांतरण के लिए स्वदेशी अधिकारियों पर निर्भरता को बहुत बड़े दोष के रूप में देखा गया था। वास्तव में भारतीय भाषाओं का अध्ययन, इस निर्भरता से पार पाने के मुख्य आधार के रूप में देखा गया। अगर फारसी दरबार में प्रयुक्त होने वाली राजनीति की भाषा थी, तो प्राचीन भारतीय नियम और ग्रंथ संस्कृत में थे। गिलक्रिस्ट द्वारा हिंदुस्तानी को 'शासन की भाषा' के रूप में स्थापित किए जाने के पीछे स्थानीय लोगों से संबंधित उच्च-नीच अनुक्रम को बनाए रखने का प्रमुख उद्देश्य था। (इसके बारे में हम अगली इकाई में चर्चा करेंगे)। इन सबके बावजूद 1800 ई में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ भारतीय भाषाओं, परंपराओं और संस्थाओं के बारे में ज्ञान के द्वारा अंग्रेजों ने महारत हासिल कर ली। इस कॉलेज का उद्देश्य ब्रिटिश अधिकारियों को मात्र कंपनी की नियमावली और अधिनियमों में ही शिक्षित-प्रशिक्षित करना नहीं था अपितु इसके साथ ही 'विदेशी जाति' पर शासन करने के लिए जरूरी उनके इतिहास भाषा, साहित्य में भी शिक्षित करना था। यह प्रशिक्षण विभिन्न भारतीय आचार्यों द्वारा दिया जाता था। कॉन ने सतर्क सिद्ध किया है कि शिक्षण संस्थाओं की स्थापना को अंग्रेज भारतीय अतीत को सुरक्षित रखने के केंद्र के रूप में देखते थे। ठीक वैसे ही जैसे कि वह अपने नियमों, साहित्य तथा संस्थानों में निरूपित था। इस प्रकार के दृष्टिकोण से ही कलकत्ता मदरसा और संस्कृत कॉलेज (जो भारतीय ज्ञान प्रदान करने में विशेषज्ञता रखते थे) की स्थापना की गई।

5.2.1 भारतीय दुभाषिए और औपनिवेशिक सूचना संग्रहण

औपनिवेशिक राज्य सत्ता को अपने शासन और विजय के लिए सेना और राजनीतिक सूचना संग्रहण पर बहुत अधिक भरोसा करना पड़ता था। एक प्रभावी शासन के लिए औपनिवेशिक गुलामों की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं की प्रवृत्ति की पर्याप्त जानकारी रखना आवश्यक था। औपनिवेशिक काल के दौरान उदित होने वाली औपनिवेशिक राज्य के निगरानी और सामाजिक संप्रेषण तंत्र पर केंद्रित सी.ए. बेयली की किताब 'एम्पायर एंड इनफॉर्मेशन' सबसे महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक है। नई सूचना तकनीक को सामाजिक संघटन के एक प्रकार के रूप में लेने वाले मैनुअल कास्टल के विचारों को लेते हुए बेयली तर्क देते हैं कि 'ज्ञान स्वयं में एक सामाजिक रचना है।' इससे उनका तात्पर्य यह है कि समाज के खास वर्गों के पास ज्ञान के विशिष्ट प्रकारों तक पहुँच थी और वे उसके भंडार थे। इस प्रकार, राजनीतिक सिद्धांत के प्राचीन भारतीय ग्रंथ राजनीतिक सूचना की दो पद्धतियों का उल्लेख करते हैं, जिनपर राजा निर्भर था। जहाँ ब्राह्मण 'अधिक परिष्कृत ज्ञान' को संग्रहित और सुरक्षित रखते थे, वहीं राजा राज्य के भू-भाग से संबंधित गहरी जानकारी रखने वाले 'धावक', 'वनपाल' और 'खोजी' जैसे आम लोगों की 'अनौपचारिक' सूचनाओं पर भी निर्भर करता था।

बेयली का तर्क है कि औपनिवेशिक राज्य में जानकारी संग्रहण उपनिवेश-पूर्व पद्धतियों पर हुआ और इस प्रकार वहाँ पर औपनिवेशिक जानकारी संग्रहण और स्वदेशी ज्ञान पद्धति परस्पर व्याख्यापरक थे। विशेष रूप से यह 1830 से पहले के काम में यही स्थिति थी। 1830 के बाद सांख्यिकीय और आनुभूतिक जानकारी पर बढ़ते हुए जोर के कारण और अविश्वसनीय स्वदेशी के डर ने भी अंग्रेजों को स्वयं स्थानीय देशी भाषा में विशेषज्ञता प्राप्त करने की ओर बढ़ाया और इस प्रकार जहाँ तक हो सकता था स्थानीय मध्यस्थता को कम करने का प्रयास किया गया। तथापि क्षेत्रीय मुखबिरों पर अत्यधिक निर्भरता के शुरुआती दिनों में भी औपनिवेशिक राज्य, बेयली द्वारा कथित, 'पुश्तैनी' और 'भावात्मक' जानकारी पर विश्वास नहीं कर सकता था। इसका कारण यह था कि पुश्तैनी जानकारी किसी विशिष्ट क्षेत्र के आभिजात्य और प्रभावशाली लोगों के ज्ञान से संबंधित थी जबकि भावात्मक ज्ञान नैतिक और धार्मिक समुदायों के विश्वासों और व्यवहारों में भागीदारी से अर्जित और उत्पन्न किया जाने वाला ज्ञान है।

इस संदर्भ में देखने की बात यह है कि जब अंग्रेज औपनिवेशिक राज्य की समाज से मुठभेड़ हुई, तब दोनों के बीच सूचना तंत्र की व्यवस्था कैसी थी? औपनिवेशिक साम्राज्य के अधिकृत क्षेत्र को सुरक्षित रखने की दिशा में प्रदेश का स्वदेशी ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें क्षेत्रीय खबरियों पर निर्भर होना पड़ता था। खुफिया तंत्र प्रणाली का निर्माण करने के लिए यह अपेक्षित था कि स्वदेशी ज्ञान के रहस्य को भेदा जाए और उसमें जोड़-तोड़ की जाए। इस प्रकार ब्रिटिश शासन के शुरुआती दौर में भाषाविदों और अनुवादकों की भूमिका बहुत विशिष्ट और निर्णायक थी।

फिर भी, इसका अर्थ यह नहीं है कि जब क्षेत्रीय खबरिए अपने औपनिवेशिक मालिकों के लिए खबर जुटा रहे थे तब उन्हें वे हर प्रकार की और सभी जानकारियाँ मुहैया करवा रहे थे। उपनिवेश साम्राज्य की यह कमजोरी तब सामने आई जब 1857 का विद्रोह हुआ। विद्रोह को रेखांकित करने वाले स्वदेशी खबरिया तंत्र की व्यवस्था ने औपनिवेशिक शासन व्यवस्था को हैरानगी में डाल दिया क्योंकि अंग्रेज अफसर ग्राम-स्तर पर आभिजात्य वर्गों और दूसरे वंशानुगत नौकरों तथा मुखबिरों द्वारा उपलब्ध कराई गई सूचनाओं को मिलाने में असफल रहे।

उपनिवेश पूर्व भारतीय राज्यों का तंत्र गहराई में संस्थापित सामाजिक एकीकरण परंपरा पर खड़ा था, जो अधीनों के राजनीतिक व्यवहारों पर नजर रखता था और शक्तिशाली वर्ग द्वारा शक्ति के दुरुपयोग को नियंत्रित करता था। चूँकि ब्रिटिश भारत एक विशाल भू-भाग था इसलिए हमेशा एक स्थान से दूसरे स्थान को चलायमान सैनिक, पुरोहित, तीर्थयात्री, शादी-बारात और आभिजात्यों के माध्यम से जानकारी यात्रा किया करती थी। उदाहरणार्थ, जॉन केय नामक कंपनी इतिहासकार अपनी रचना 'हिस्ट्री ऑफ सिपॉय म्यूटिनी' में भारतीय संप्रेषण व्यवस्था की तेजी पर प्रकाश डालते हैं। यद्यपि जाति आधारित राजनीतिक अर्थव्यवस्था समाज को खंडित और बहुत ही स्तरित करती थी, किंतु केवल उच्च जातियों के बीच विवाह-व्यवस्था की प्रथा ने उनके उपार्जित ज्ञान को उनकी अगली पीढ़ी के लिए संरक्षित और परिलक्षित किया। इसके अतिरिक्त, भारतीय शासक को संपत्ति पर मजबूत पकड़ और राजा के प्रति प्रजा की राजनीतिक निष्ठा बनाए रखने के लिए स्थानीय लोगों और व्यापारियों से प्राप्त व्यावहारिक सूचना पर आश्रित होना पड़ता था।

1200 ई. के बाद के समय में मुगलों ने आधिकारिक राजनीतिक विवरण देने की अधिक सुव्यवस्थित पद्धति प्रारंभ की थी और नियमित पोस्ट-स्टेशन की स्थापना की थी। अकबर के शासनकाल में प्रत्येक प्रांत का अपना एक 'घटनाओं का अभिलेखी' होता था जिसे 'वाकिया निगार' या 'वाकिया नवीस' के नाम से जाना जाता था। प्रधान समाचार लेखक क्षेत्रीय समाचार-पत्रों के अवलोकक के साथ-साथ गुप्तचर के तौर पर भी नियुक्त होता था। उसका कार्य प्रांतीय शासकों और आधिकारिक समाचार लेखकों की रिपोर्ट का निरीक्षण करना होता था। शासक संतों, ज्योतिषों और चिकित्सकों को उनके प्रामाणिक तौर पर उपलब्ध कराए जाने वाले 'गुप्त ज्ञान' के लिए संरक्षण दिया करते थे।

1765 में बंगाल का भू-राजस्व प्रबंधन ब्रिटिशों द्वारा संभालने के बाद उनकी राजस्व प्रबंधन की भारतीय पद्धति और कूटनीति की जटिलताओं में अधिक पहुँच हो गई। जो भारतीय पहले मुगल दरबार में नियुक्त थे, उन्हें अंग्रेजों ने मुखबिरों के रूप में और हरकारों, समाचार लेखकों तथा राजनैतिक सचिवों से प्राप्त सामग्रियों को मिलाने के लिए बहाल कर लिया गया था। अठारहवीं सदी के अंत तक कई जगहों पर नियमित डाक केंद्र स्थापित हो चुके थे और संदेश पहुँचाने के लिए स्वदेशी वाहकों का प्रयोग किया जाता था।

बेयली संकेत करते हैं कि जब एक बार विविध स्रोतों से जानकारी इकट्ठी हो जाती थी तब उसे भारतीय शासक ठीक उसी तरह व्यवस्थित करते थे जैसा कि बाद में ब्रिटिश लोगों ने किया। इस प्रकार, स्वदेशी शासकों ने धर्म और जाति जैसी श्रेणियों का अच्छा-खासा प्रयोग किया, जिन्हें बाद में ब्रिटिश शासन के अंतर्गत जनगणना की संस्था ने मूर्त रूप दिया और संवर्धित किया।

5.3 भारतीय व्याख्याकार और औपनिवेशिक कानून का निर्माण

1757 ई. में प्लासी के युद्ध के पश्चात् ईस्ट इंडिया कंपनी को सांविधानिक और विधिक तंत्र के समूह की आवश्यकता पड़ी ताकि वह अपने बढ़ते हुए राज्य पर शासन कर सकें और उसके साथ समझौता कर सकें। जैसा कि अपनी पुस्तक 'कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज' में बर्नार्ड कॉन व्याख्या करते हैं कि भारतीय परिस्थिति ने अंग्रेजों के सामने एक विलक्षण कठिनाई प्रस्तुत की। आयरलैंड, वेल्स और स्कॉटलैंड में औपनिवेशिक शासन को आगे बढ़ाने के लिए कुछ ही सीमित प्रकार के परिवर्तनों की आवश्यकता थी। इनके अतिरिक्त, उत्तरी अमेरिका और कैरीबियाई उपनिवेशों में अधिकांशतः ग्रेट ब्रिटेन के जैसी ही राजनैतिक एवं कानूनी संस्थाएँ थीं इसलिए अधिक समझौतों की आवश्यकता नहीं थी। भारत की स्थिति में यह बिल्कुल भिन्न था क्योंकि यहाँ की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति भिन्न थी तथा राजस्व उगाहने तथा युद्ध करने के अधिकारों के साथ कंपनी ने धीरे-धीरे एक राज्य की तरह कार्य करना शुरू कर दिया था।

1765 ई. में बंगाल दीवानी अधिकार की अनुमति ने अंग्रेजों को जिम्मेदार सरकार के बदले में भारतीय शासकों से अनुदान और राजस्व प्राप्त करने के लिए अधिकृत कर दिया। किंतु राजस्व के 'वसूलकर्ता और स्वामी' के रूप में कार्य करने के अधिकार को ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स ने एक त्रुटि के रूप में माना। उनका विश्वास था कि इस प्रकार का निकट जुड़ाव अंग्रेजी शासकों का 'धूर्त स्वदेशियों' की 'कलाओं' के प्रति संवेदनशील बना देगा, जो उन्हें धोखा देने और भुगतान से बचने का प्रयास करेंगे। इसके बजाय बोर्ड ने सुझाव दिया कि अंग्रेज अधिकारी राजस्व संग्रहण की प्रक्रिया की केवल निगरानी करें। यहाँ से हम यह देखना भी प्रारंभ करते हैं कि भारतीयों पर सफलतापूर्वक शासन की बात आते ही अंग्रेज एक उलझन का सामना करते थे अर्थात् वे भारतीयों पर विश्वास नहीं करते किंतु उनकी विडंबना यह थी कि इसके साथ ही उन्हें ऐसे भारतीयों की आवश्यकता भी थी जो भू-राजस्व के निर्धारण और वसूली में दक्ष हों।

एक अनजान देश में शासन स्थापित करने के लिए अंग्रेजों को प्रशासनिक कार्यों के लिए स्वदेशी भाषा के ज्ञान की आवश्यकता थी। 17वीं और 18वीं शताब्दी तक अंग्रेज प्राचीन भाषा 'संस्कृत' को एक गुप्त भाषा के रूप में मानते रहे जिसे केवल ब्राह्मण जाति के लोग ही जानते थे। 17वीं शताब्दी में यूरोपियनों खासकर कैथोलिक मिशनरियों ने संस्कृत सीखने के कई प्रयास किए, किंतु उनके प्रयास उतने सफल नहीं हुए। शुरू में अंग्रेजों ने संस्कृत सीखनी चाही पर वे अपने प्रयासों में सफल नहीं हुए। उनके संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद ने भारतीय विधि

के वर्गीकरण की नींव डाली। भारत में तीस वर्ष बिताने के पश्चात् ज्हॉन हॉवेल ने फारसी, बांग्ला और हिंदुस्तानी सीखी। 1756 ई. में सिराजुद्दौला के काल में उन्होंने 'घंटुशास्त्र' का अनुवाद किया जो बाद में 1767 ई. में प्रकाशित हुआ। पर दुर्भाग्यवश हॉवेल से पांडुलिपि के साथ-साथ उसका भारतीय रूपांतरण भी खो गया। हॉवेल की कहानी यहीं समाप्त नहीं होती। उसने हिंदुओं के बारे में संदेही दृष्टिकोण रखने के लिए अपने पूर्ववर्तियों की आलोचना करना जारी रखा। उसके पूर्ववर्ती अक्सर हिंदुओं को 'बेवकूफों और गँवारू मूर्तिपूजकों की जाति' कहते थे। हॉवेल ने आगे तर्क किया कि यह कैथोलिक मिशनरियों का फैलाया हुआ षड्यंत्र था क्योंकि वे हिंदुओं का धर्म परिवर्तन करना चाहते थे।

1772 ई. की वॉरेन हेस्टिंग की योजना के अंतर्गत भारत की और भाषाओं को सीखने पर बल दिया गया। हेस्टिंग का शासन के बारे में मुख्य विचार था कि विधि के मामले में स्वदेशी भारतीयों को उनके अपने सिद्धांतों से शासित किया जाए। इसके परिणामस्वरूप, आपराधिक न्याायालयों में, विधि के मुख्य व्याख्याताओं के रूप में, काजी, मुफ्ती और मौलवी को नियुक्त किया गया तथा मूल रूप से विवाह, जाति के मुद्दों, उत्तराधिकार और धार्मिक मसलों पर विचार करने वाले दीवानी न्यायालयों में मुसलमानों के लिए कुरान शरीफ के कानूनों तथा हिंदुओं के लिए 'घंटुशास्त्र' से संदर्भ लिए गए। हेस्टिंग के कदम ने भारत में आधुनिक न्यायिक व्यवस्था के निर्माण की नींव डाली।

किंतु प्राचीन भारत में औपनिवेशिक कानूनों के आविर्भाव में पीटर वैन डेर वीर का परिप्रेक्ष्य और विवेचन बड़ा रोचक है। उनका तर्क है कि भारत को सनातन धर्म की भूमि के रूप में और ब्रिटेन को आधुनिक धर्मनिरपेक्ष की भूमि के रूप में प्रदर्शित करना, भारत को इतिहास से बाहर कर देता है और अंग्रेज इतिहास के एजेंट बन जाते हैं। सरल शब्दों में कहें तो, उनका अभिप्राय था कि यह ऐतिहासिक 'मिलन' और 'मुठभेड़' कुल मिलाकर एक साझा औपनिवेशिक अनुभव उत्पन्न करते हैं। भारत और ब्रिटेन दोनों ने इस परस्पर प्रभाव से अपनी राष्ट्रीय संस्कृति विकसित की। पर साथ ही यह एक दोतरफा प्रक्रिया होती है। इस प्रकार औपनिवेशिक कानून प्राचीन भारतीय संहिता और कुरान व अन्य धार्मिक ग्रंथों से बना था। किंतु कानून के नियम लागू करने की औपनिवेशिक मंशा और भारतीय लोगों के जीवन के विभिन्न क्षेत्रों को नियंत्रित करने वाले प्राचीन धर्मग्रंथों की उपलब्धता के बीच साझा संबंध पुजारियों और मौलवियों की भूमिका के बिना संभव नहीं होती है।

हिंदुओं और मुसलमानों को उनके अपने-अपने धार्मिक कानूनों से शासित करने का विचार काफी हद तक वारेन हेस्टिंग की योजना में ही निहित था। उसने बंगाल में कई संन्यासी ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें शास्त्रीय साहित्य के महत्वपूर्ण भागों को संग्रहित करने व अंग्रेजी में अनुवाद करने का कार्य एन.बी. हाल्हैड के विश्वस्त निरीक्षण में सौंपा। हाल्हैड एक सिविल सर्वेंट थे। हाल्हैड ने जिस तरीके से ग्रंथों का अनुवाद करवाया, वह आज गहन अध्ययन का विषय है। चूँकि उन्हें संस्कृत का सीमित ज्ञान था इसलिए उन्हें बांग्ला या हिंदुस्तानी में विमर्श करने के लिए पंडितों पर निर्भर रहना पड़ता था। बांग्ला या हिंदुस्तानी जनसाधारण के बीच बातचीत के लिए सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली भाषाएँ थीं। इसके बाद एक बंगाली मुसलमान मुंशी ने उन्हें फारसी में अनूदित किया और अंततः हाल्हैड ने उस फारसी अनुवाद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। यह 1776 ई. में 'कोड ऑफ घंटु लॉ'; या 'ऑर्डिनंस ऑफ द पंडित्स' नाम से प्रकाशित हुआ। संस्कृत में मूल संग्रहित ग्रंथ 'विवादर्णावसेतु' नाम से जाना जाता था। यह ग्रंथ फारसी व संस्कृत में भी प्रचलन में था। किंतु इसका अंग्रेजी रूपांतरण ही 19वीं शताब्दी के आरंभिक भाग तक ईस्ट इंडिया कंपनी के न्यायालयों में प्रयोग किया जाता रहा।

इस संदर्भ में एक और महत्वपूर्ण नाम विलियम जोंस (1746-1749) का है। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से फारसी और अरबी का अध्ययन किया था और वे 1783 में भारत में जज के रूप में नियुक्त हुए थे। उन्होंने अरबी व फारसी ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद किया। बाद में वे संस्कृत सीखने की ओर आकर्षित हुए। संस्कृत सीखने के बाद उन्होंने अंग्रेजी में अनूदित फारसी विधिक ग्रंथ को त्रुटिपूर्ण पाया। चूँकि अंग्रेज न्यायाधीश पूर्ण रूप से पंडितों और मौलवियों की व्याख्या पर निर्भर थे, इसलिए उन्होंने अनुभव किया कि भारतीय व्याख्याकार प्राचीन लिपियों के पाठ्यपरक ज्ञान पर अपना एकाधिकार जता रहे थे। यद्यपि जोंस अंग्रेजी विधिक व्यवस्था को प्राचीन हिंदू कानून से बेहतर मानते थे, किंतु साथ ही उनका यह मत भी था कि उन कानूनों को शासित लोगों पर लागू नहीं किया

जा सकता। इससे बचने का एक ही रास्ता था कि अंग्रेज न्यायाधीशों को भारतीय व्याख्याकारों की व्याख्या के सूक्ष्म निरीक्षण के योग्य बनाया जाए।

जोंस की मृत्यु के पश्चात् एच.टी. कोलब्रुक ने जोंस के कार्य को जारी रखा। उन्होंने यह अंग्रेजी अनुवाद पूर्ण किया और 1798 में 'द डाइजेस्ट ऑफ हिंदू लॉ ऑन कॉन्ट्रैक्ट्स एंड सक्सेशन' को कलकत्ता से प्रकाशित कराया। हिंदुओं के प्राचीन अंकगणित सीखने में कोलब्रुक की रुचि उन्हें संस्कृत भाषा के अध्ययन की ओर ले गई। किंतु बाद में उनकी रुचि प्राचीन गणित से हिंदू विचार, संस्कृति और कानून के अध्ययन में परिवर्तित हो गई। अंततः कोलब्रुक ने हिंदू कानून की व्याख्या करने का यूरोपीय विचार प्रस्तुत किया। इसने उनके न्याय के प्रशासन में भारतीय-ब्रिटिश और ब्रिटिश विचार को व्यापक रूप में प्रभावित किया। इस प्रकार कोलब्रुक प्राचीन हिंदू ज्ञान के संपूर्ण क्षेत्र को संस्थापित करने में सफल रहे।

5.4 भारतीय दुभाषिए और लोक साहित्य

विधि, राजस्व और प्राचीन ग्रंथों के अतिरिक्त अंग्रेजों ने देशी लोक साहित्य के अध्ययन पर भी विशेष ध्यान दिया। जैसा कि इस इकाई के भाग 5.2.1 में यह चर्चा की जा चुकी है कि अंग्रेजों ने 1857 के विद्रोह को औपनिवेशिक सूचना संग्रहण की विफलता माना। उनका विश्वास था कि किसानों द्वारा समर्थित विद्रोही गुप्त संदेशों और गूढ़ संकेतों में वार्तालाप करते थे। यह प्रायः 'मौखिक और सांकेतिक बातचीत के द्वारा किया जाता था। अर्थात् विद्रोह के संगठन के लिए विद्रोहियों के बीच कहानियाँ' लोक भाषाओं में प्रचारित की जाती थीं। यह इस हद तक था कि ब्रिटिश अधिकारियों के लिए कहानियों का अर्थ दुग्राह्य बना रहता था। इसने इस धारणा को स्थापित एवं आगे बढ़ाया कि भारत के लोगों को जानने के लिए 'लोक साहित्य के ज्ञान की आवश्यकता है, क्योंकि अंग्रेजों के विपरीत भारतीय प्राचीन एवं परंपरागत रीति-रिवाजों से 'बंधे' हुए हैं।' उस समय के अन्य अनेक ब्रिटिश अधिकारियों के समान आर.सी. टेम्पल ने यह बताया कि स्थानीय लोक साहित्य का ज्ञान स्थानीय "सहानुभूति" हासिल करने का समर्थन करेगा जो देश के शासन को आगे बढ़ाने में मदद करेगा। इस प्रकार, 1857 के बाद जनसाधारण, उनकी धारणाओं एवं स्थानीय रीति-रिवाजों को जानने में दिलचस्पी बढ़ी। यह धर्मग्रंथों के अनुवाद के पूर्व प्राच्यवादी चिंतन से एक बहुत बड़ा परिवर्तन था।

इस संबंध में ग्लोरिया गुडविन रहेजा का मानना है कि स्वदेशी लोकोक्तियाँ प्रायः विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ के बिना व्याख्यायित होती थीं, इसलिए उनके अर्थ औपनिवेशिक प्रशासनिक रिपोर्ट में निर्धारित थे। पाठकरण या इन टैक्चुअलाइजेन की प्रक्रिया के अंतर्गत ये कहावतें तब जाति व्यवस्था और ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन पर सहमति को दर्शाने के लिए प्रदर्शित की जाती थीं। रहेजा के तर्क का एक पक्ष यह था कि मुख्यतः उच्च वर्ग से संबंध रखने वाले स्वदेशी व्याख्याकार इस तरह की रचना में सहायक थे। उदाहरण के लिए, रिजली की 'द पीपुल ऑफ इंडिया' में वे जाति की सख्त प्रकृति और इसके लिए लोगों की सहमति को रेखांकित करने वाली कहावतों को उद्धृत करते हैं। रहेजा सुझाव देती हैं कि इस तरह का परिदृश्य उच्च वर्ग के खबरियों की स्थिति को दृढ़ करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो रिजली द्वारा संग्रहित कहावतें उन स्थानीय अभिजात्यों के द्वारा उपलब्ध कराई गई थीं जो निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए ऐसा पदानुक्रमिक समाज बनाना चाहते थे जहाँ उनका उचित स्थान हो। इसके अतिरिक्त रहेजा ने कुछ ऐसे उदाहरणों का उल्लेख किया है, जहाँ औपनिवेशिक अधिकारियों को जाति प्रथा की मान्यता को चुनौती देने वाली लोकोक्तियाँ और लोककथाएँ मिली थीं। वे तर्क देती हैं कि इस असंगति की व्याख्या करने का औपनिवेशिक अधिकारियों के पास एक ही तरीका था कि जाति के व्यवहार में आने से पहले के 'उत्तर-जीवन' के रूप में इसे मान लेना। इसलिए विलियम क्रुक के साथ अनुवादक और सहायक के रूप में कार्य करने वाले पं. रामगरीब चौबे जब ब्राह्मण को दुसाध द्वारा पीटे जाने वाले एक गीत से परिचित होते हैं तब वे मतभेद को सम्मिलित करने वाली उसी परिकल्पना का सहारा लेते हैं, और इस प्रकार 'वर्तमान सामाजिक रूप पर विशेष रूप से स्थापित और जानबूझकर बनाई गई आलोचनात्मक व्याख्या' के रूप में इसके अध्ययन की संभावना से इंकार करते हैं। (रहेजा, पृ.499)

चौबे के संबंध में रहेजा के तर्क को दोहराते हुए साधना नैथियाना अपनी पुस्तक 'इन क्वेस्ट ऑफ इंडियन फोकटेल्स : पंडित रामगरीब चौबे एण्ड विलियम क्रुक' (2009) में तर्क देती हैं कि रहेजा का दावा विलियम क्रुक के नृजातीय वर्णन पर आधारित है। यह चौबे के विशिष्ट योगदान को व्यक्त करने में नाकाफी है। साधना नैथानी निम्न वर्ग, महिलाओं और उनके ऊपर हुए अत्याचार से जुड़े मुद्दे से संबंधित, पं. चौबे द्वारा एकत्रित और अनूदित, बहुत-सी कथाओं की ओर संकेत करती हैं। वे तर्क देती हैं कि उच्च वर्गों के प्रभुत्व के प्रतिनिधि होने के बावजूद पं. चौबे को उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार के संदर्भ में समझा जाना चाहिए जिसमें जाति और महिलाओं से संबंधित मुद्दों ने केंद्रीय स्थान ग्रहण कर लिया था। इन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के बावजूद हमारे लिए यहाँ यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि औपनिवेशिक अधिकारियों ने जो अभिव्यक्ति एवं तर्क प्रस्तुत किए उसने स्वदेशी खबरियों की स्थिति को कैसे और किस हद तक तोड़ा-मरोड़ा और प्रभावित किया।

1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद कुछ जातियाँ विद्रोह में 'संलग्न' एवं उसके लिए 'प्रवृत्त' मान ली गई थीं। बाद में इस आधार पर उन्हें 'उपद्रवी' व 'अपराधी' या 'क्रिमिनल' समझा गया। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि 1871 तक 'इंडियन क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट' की भी स्थापना हो चुकी थी, जो कुछ जनजातियों को 'अपराधियों' के रूप में वर्गीकृत करता है। रहेजा दिखाती हैं कि कैसे गुर्जर, खराल और मियों के संबंध में जातियों की हिंसक और विद्रोही प्रवृत्ति पर विशेष बल देने वाली लोकोक्तियों को विलियम क्रुक, ई.ए. डब्ल्यू. ओल्डहम और ड्रेनजिल इबेटसन जैसे अधिकारियों ने चुना और उनकी प्रतिकृति तैयार की।

19वीं शताब्दी में भू-राजस्व पद्धति के विस्तार के बाद प्रायः भू-संपन्न वर्ग से खबरियों को चुना गया। अतः इस प्रकार एकत्रित जानकारी भी उच्च स्थान बनाए रखने की खबरियों की प्राथमिकता को प्रतिबिंबित करती है। रहेजा इस संभावना तक सुझाव देती हैं कि इस प्रकार की लोकोक्तियाँ स्थानीय आभिजात्यों ने 'लूट की जिम्मेदारी से बचने के माध्यम के रूप में चुनीं जिसमें उन्होंने खुद सुरक्षा और सहायता उपलब्ध कराने के लिए कुछ सदस्यों को यह काम करने के लिए बाध्य किया।' (रहेजा, 502) इस प्रकार, रहेजा हमें ऐसी परिस्थिति के प्रति सूचित करती हैं जिसमें कुछ भाषाएँ और मौखिक परंपराओं को हथिया लिया गया था और, ज्ञान के कुछ रूपों (जोकि स्थानीय आभिजात्यों द्वारा उपलब्ध कराए गए थे) को स्वदेशियों के रिवाजों का निरूपण मान लिया गया।

5.5 सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद हमने यह जाना कि औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना विभिन्न ब्रिटिश अधिकारियों के साथ व अंतर्गत काम करने वाले विभिन्न स्वदेशी खबरियों और सहायकों के बिना संभव नहीं थी। ये वे स्वदेशी थे जिन्होंने व्याख्या द्वारा अंग्रेजों को एक अज्ञात संसार से परिचित करवाया। राजस्व वसूली से लेकर विधि के संहिताकरण और लोक साहित्य के अभिलेखन तक विभिन्न क्षेत्रों में अंग्रेजों को स्वदेशियों की आवश्यकता थी। अंग्रेजों द्वारा नियोजित स्वदेशी दुभाषिए प्रायः आभिजात्य वर्ग से संबंध रखते थे। व्याख्या अनुवाद की यह प्रक्रिया एक खास दृष्टिकोण के जन्म का कारण बनी, जिसने आभिजात्य खबरियों को लाभ पहुँचाया। फिर भी इस तरह की व्याख्या की प्रक्रिया से प्राप्त/अर्जित जानकारी को चयनपूर्वक भारतीयों के एक खास प्रकार के चित्रण के लिए प्रस्तुत और पुनरुत्पादित किया गया, जिसने औपनिवेशिक हित को पूरा किया।

5.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. भारतीय दुभाषियों और औपनिवेशिकता में बीच संबंध की व्याख्या कीजिए।
2. स्वदेशी खबरियों या मुखबिरों और औपनिवेशिक जानकारी संग्रहण के बीच संबंध की व्याख्या कीजिए।
3. औपनिवेशिक कानून के निर्माण में भारतीय व्याख्याकारों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
4. लोक साहित्य का संग्रहण और व्याख्या औपनिवेशिक परियोजना के केंद्र में क्यों और कैसे थी? व्याख्या कीजिए।

5.7 शब्दावली

इन टैक्सुअलाइजेन : ग्लोरिया गुडविन रहेजा के अनुसार यह प्रक्रिया औपनिवेशिक प्रशासनिक रिपोर्ट और जनगणना में बोली और मौखिक वृत्तांत के पारंपरिक प्रयोग के खास संदर्भ को मिटाती है और इस प्रकार जाति और औपनिवेशिक शासन के लिए सामंजस्य की स्थिति को सुसाध्य बनाती है।

फरमान : राजाज्ञा।

मदरसा : एक संस्था जहाँ मुस्लिम धार्मिक ग्रंथ व्याख्यायित किए जाते हैं।

शास्त्र : मुख्यतः संस्कृत में लिखित प्राचीन हिंदू दार्शनिक ग्रंथ।

हरकारा : संदेशवाहक।

परवाना : संदेश।

खबरी : खबर देने वाला जासूस।

5.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- बेयली सी.ए., 1996, *एम्पायर एंड इनफॉर्मेशन : इंटैलिजेंस गैदरिंग एंड सोशल कम्युनिकेशन इन इंडिया, 1780-1870*, कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
- बर्नार्ड, कॉन, *कोलोनियलिज्म एंड इट्स फॉर्म्स ऑफ नॉलेज : द ब्रिटिश इन इंडिया*, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- ब्रेकेनरिज कैरॉला ए. और पीटर वेन डेर वीर (संपा.), 1994, "कोलोनियल हिस्टीज एंड नेटिव इनफॉर्मेंट्स" *निकोलस बी. डर्क्स, पर्सपैक्टिव्स ऑन साउथ एशिया : ओरिएंटलिज्म एंड द पोस्ट कोलोनियल प्रिडिकैंट*, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- फ्रांस पीटर, 2001, *ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी टू ट्रांसलेशन स्टडीज*, नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
- नैथियाना, साधना, 2009, *इन क्वैस्ट ऑफ इंडियन फोकटेल्स : पंडित रामगरीब चौबे एंड विलियम कुक*, हैदराबाद : ओरिएंट ब्लैकस्वैन।
- रहेजा ग्लोरिया गुडविन, 1996, "*कास्ट, कोलोनियलिज्म एंड द स्पीच ऑफ द कोलोनाइज्ड : इन टैक्सुअलाइजेशन एण्ड डिसिप्लिनरी कंट्रोल इन इंडिया*", अमेरिकन एथ्नोलॉजिस्ट, खंड-23, क्रम-3 (अगस्त), पृ. 494-513, ब्लैकवैल।